नाद-नर्तन
जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूजिक
ISSN: 2349-4654
वर्ष : 14, अंक : 1, जनवरी 2026

तबला एवं मृदंगम वाद्य का तुलनात्मक अध्ययन एवं वादन में अंतर्संबंधिक प्रयोग

विजय शंकर मिश्र
शोधार्थी, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

शोध-पत्र

भूमिका

भारतीय संगीत की परंपरा समग्र विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध परम्पराओं में से है। संगीत की तीन मुख्य तत्त्व जो इसे पूर्णता प्रदान करते हैं वो हैं – गायन, वादन एवं नृत्य। इन सभी में मुख्य आधारभूत तत्त्व लय है। जिसे ताल द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इन्ही लयबद्ध तालों को संगीत की रीढ़ भी कहा जा सकता है। बिना लय एवं ताल के कोई भी संगीत प्रस्तुति शास्त्र सम्मत नहीं हो सकती है। भारतीय संगीत की दो धाराएं प्रमुख हैं।

1. उत्तर भारतीय संगीत (हिन्दुस्तानी संगीत)
2. दक्षिण भारतीय संगीत (कर्नाटक संगीत)

इन दोनों ही परम्पराओं में लय स्थापना का कार्य अवनद्ध वाद्य अर्थात ताल वाद्यों का होता है। इन सभी ताल वाद्यों में सर्वश्रेष्ठ उत्तर भारतीय परंपरा में तबला एवं दक्षिण भारतीय परम्परा में मृदंगम वाद्य को माना जाता है। इन दोनों वाद्यों में एक जो मध्य काल के दौर में आया तथा दूसरा जो अपनी प्राचीन वैदिक परंपरा से जुड़ा है इन दोनों की भौतिक संरचना और वादन शैली अलग-अलग है बावजूद इसके इन दोनों का कार्य एक ही है लय को कायम रखना। इन वाद्यों में तबले की ताल पद्धति जहाँ आम जन मानस के लिए सरल, स्पष्ट एवं सुगम होती है वहीं मृदंगम की ताल पद्धति अत्यधिक जटिल, गणनात्मक एवं तकनीकी दृष्टि से समृद्ध है। इसे भारतीय संगीत में लयात्मकता की दृष्टि से राष्ट्रीय एकीकरण कहा जा सकता है। इनके अंतर्संबंधिक प्रयोगों नें वादकों को नई तकनीकों के विकास के लिए प्रेरणा दी है जिससे ये दोनों ही वाद्य अपनीं पारंपरिक सीमाओं से आगे निकलकर वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना रहे हैं।

अनुसंधान क्रियाविधि

यह शोधपत्र गुणात्मक और तुलनात्मक विश्लेषण विधियों को मिलाकर तबला एवं मृदंगम के सांस्कृतिक महत्त्व की व्यापक समझ प्रदान करता है। इस अध्ययन में ऐतिहासिक विधि, साहित्य सर्वेक्षण, कार्यक्रमों का अवलोकन, विद्वानों से प्राप्त महत्त्वपूर्ण जानकारी तथा ऑनलाइन विडियो आदि शामिल हैं। इस शोध पत्र के माध्यम से अतीत के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान प्रयोगों का अध्ययन कर भविष्य में इनकी सार्थकता से अवगत कराने का प्रयास किया गया है।

मृदंगम

मृदंगम दक्षिण भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय अवनद्ध वाद्य है। मध्यकाल से पूर्व समस्त भारत में एक ही संगीत पद्धति का प्रचार-प्रसार था अतः उनके साथ मृदंगम वाद्य का ही प्रयोग होता था। ऐसा प्रतीत होता है तमिल, कन्नड़, मलयालम, संस्कृत आदि भाषाओं के प्रभाव के कारण मृदंग को मृदंगम कहा जाता होगा। प्राचीन काल में मृदंगम का शरीर (ढांचा) मिट्टी से बनाया जाता था जिस कारण इसका नाम मृदंग (मृदा+अंग = मृदंग) पड़ा। (Sunil- 34) कालान्तर में मृदंगम का शरीर कटहल, नीम, लाल चन्दन आदि लकड़ियों से बनाया जानें लगा तथा आधुनिक काल में कटहल की लकड़ी से बने मृदंगम का प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है। मृदंगम की लम्बाई सामान्यतः 22 से 24 इंच के मध्य होती है। इसके दाहिनें मुख का व्यास छः से पौने सात इंच (6 से 6 इंच) तथा बाँये मुख का व्यास पौनें सात से पौनें आठ इंच (6 से 7 इंच) तक होता है। इसके दोनों मुखों पर चमड़ा मढ़ा होता है। इसपर मढ़े चमड़े की तीन परत होती है। (गुप्ता-60) दाहिनें मुख के पुड़ी को "वलंथलई" कहा जाता है। सबसे निचली परत जो हमें दिखाई नहीं देती ये लकड़ी के ऊपर 1 इंच चौड़ी पट्टी सी होती है जो मुख्य चमड़े यानीं पूड़ी की सुरक्षा के लिए होती है। तमिल में इसे "उक्कार टट्टू" कहते हैं। दूसरी मुख्य परत कोट्टू टट्टू (वादन परत) या चापू तोल कहते हैं इसी पर स्याही लगी होती है जिसे तमिल में करणई कहते हैं। ये मैगनीज़ और आयरन आक्साइड का एक चूर्ण है जिसे पके हुए चावल के पेस्ट में मिलाया जाता है। तीसरी और बाहरी परत को वेट्टू टट्टू या मीटू तोल कहते हैं ये मध्य परत के ऊपर चौड़ी पट्टीनुमा होती

है जो स्याही को छोड़कर पूरे पूड़ी को ढके रहती है। इसमें पहली और तीसरी परत गाय के बछड़े और दूसरी परत बकरे के चमड़े की हो ती है। (Shankaran- 67) मृदंगम के बाँये मुख को "इदंथलई या थोप्पी" कहते हैं। इसके भीतरी और ऊपरी चमड़े की परत भैंस तथा मध्य परत बकरे के चमड़े की होती है। जिसपर वादन से पूर्व रवा (सूजी) का लेप लगाते हैं एवं वादनोपरांत इसे खुरचकर निकाल दिया जाता है। मृदंगम के दोनों मुखों पर अच्छादित चमड़ों को भैंस के चमड़े द्वारा बनी रस्सीनुमा बद्धी (वारु) से कसा जाता है। वर्त्तमान में नट वोल्ट का प्रयोग भी किया जा रहा है। मृदंगम को उचित स्वर में मिलानें के लिए लकड़ी के आठ छोटे छोटे बेलनाकार टुकडे लगे होते हैं जिन्हें "गट्टा या गुल्ला" कहा जाता है।

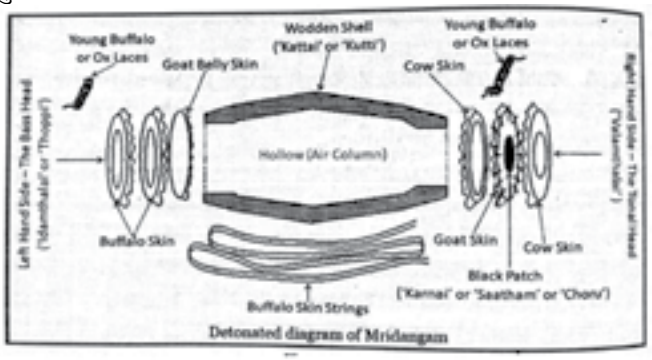

चित्र क्र. 1 – मृदंगम वाद्य के अंग (Sunil- 54)

तबला

उत्तर भारतीय ताल वाद्यों में तबले का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्त्तमान में तबला लगभग सभी प्रकार के संगीत के साथ संगत हेतु प्रयोग किया जाता है। तबले के दो भाग होते हैं अधिकतर दाँये ओर रखकर बजाये जानें वाला भाग जिसका शरीर (ढाँचा) लकड़ी से निर्मित हो "दाहिना या तबला" कहलाता है तथा बाँये ओर रखकर बजाया जानें वाला भाग जिसका शरीर (ढाँचा) धातु से निर्मित होता है "बाँया या डग्गा" कहलाता है। इन्हीं दोनों भागों को मिलाकर तबला जोड़ी कहलाता है। दाहिनें भाग के काष्ठ (लकड़ी) की लम्बाई लगभग 10 से 12 इंच तक होती है। इसके लिए शीशम, नीम, खैर, विजय शाल आदि की लकड़ी उचित मानी जाती है। इसका उपरी भाग खुला होता है जिसका व्यास लगभग 4 1/2 से 7 1/2 इंच के मध्य होता है। (श्रीवास्तव- 165) जिसपर चमड़ा मढा होता है इसे पुड़ी कहते हैं। जो बकरे की खाल से निर्मित होता है। ये चमड़ा तीन परतों में होता है। पहली परत जो भीतर में मुख्य चमड़े की सुरक्षा हेतु लकड़ी के ऊपर लगाया जाता है। दूसरी परत मुख्य चमड़ा जिसपर काले रंग की स्याही लगी होती है। इस स्याही को लौह भस्म चूर्ण के साथ पके हुए चावल के साथ मिश्रित कर तैयार किया जाता है। तीसरी परत जो बाहर की तरफ लगभग 1 इंच का पट्टीनुमा लगा होता है जिसे "किनार या चांटी' कहा जाता है। इस पुड़ी को कसनें के लिए चमड़े की बद्धी लगाई जाती है तथा उचित स्वर में मिलाने के लिए आठ लकड़ी के बेलनाकार छोटे-छोटे टुकड़े लगाये जाते हैं जिन्हें गट्टा कहते हैं। इसका बाँया भाग (डग्गा) प्राचीन समय में मिट्टी का होता था किन्तु वर्त्तमान में स्टील, पीतल तथा तांबे की धातु से निर्मित होता है इसकी ऊँचाई लगभग 10 इंच तथा इसके मुख का व्यास लगभग 9 से 10 इंच के आस-पास होता है। इसका आकार छोटे गमले की तरह गोल पेंदी युक्त होता है। इसकी पुड़ी में स्याही बीचो बीच न लगाकर थोडा हटाकर लगाई जाती है। (श्रीवास्तव- 120)

चित्र क्र. 2 – तबला वाद्य के अंग (श्रीवास्तव - 25)

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष

सर्वप्रथम वैदिक काल में संगीत वाद्यों का वर्णन प्राप्त होता है, जिससे यह सिद्ध होता है की उस काल में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का विकास हो चुका था। रामायण काल में वीणा और मृदंग द्वारा नृत्य की संगति का उल्लेख मिलता है। महाभारत काल में वीणा, वेणु, दुन्दुभी, पुष्कर आदि वाद्यों के वर्णन मिलते हैं। तबला एवं मृदंगम के जन्म के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं तथा ये अनेक मत संगीत रसिकों एवं संगीत विद्यार्थियों के लिए असमंजस की स्थिति उत्पन्न करते हैं। ज्यादातर संगीत विद्वानों के अनुसार आचार्य भरत कृत "नाट्यशास्त्र" में वर्णित त्रिपुष्कर से विकसित वाद्य ठोस प्रमाण के रूप में प्राप्त हैं। आचार्य भरत मुनि नें अवनद्ध वाद्यों की रचना, निर्माण आदि का विस्तृत वर्णन करते हुए त्रिपुष्कर वाद्य को सर्वोच्य स्थान प्रदान किया है। इसके आविष्कार की प्रेरणा सर्वप्रथम "स्वाति मुनि" को प्राप्त हुई थी । जिसकी कथा इस प्रकार है की एक बार जब महर्षि स्वाति जल लेनें के लिए नदी पर गए तो उस समय वर्षा हो रही थी तथा पास में ही कमल के पत्तों पर अपनीं विभिन्न कोमल अवस्थाओं में गिरती वर्षा की बूँदें अलग-अलग ध्वनियाँ उत्पन्न कर रही थीं । स्वाति मुनि नें इस घटना का बारीकी से अवलोकन किया और दिव्य शिल्पकार विश्वकर्मा जी की सहायता से उन ध्वनियों को उत्पन्न करनें योग्य वाद्य का निर्माण किया जो देवताओं की "दुन्दुभी" के सामान मिट्टी द्वारा आलिंग्य, ऊर्ध्वक और आंकिक तीन विभिन्न रूपों में निर्मित हुआ। इसके तीनों रूप त्रिपुष्कर, या पुष्करत्रय के नाम से प्रसिद्ध हुए। (Gopalakrishnan 1-2) स्वाति मुनि ने कमल पत्रों पर सुनी गई ध्वनियों के अनुरूप त्रिपुष्कर वादन के लिए

सोलह आधारभूत वर्णों (पाटाक्षरों) की रचना की ताकि वाद्य ऊँची, नीची व गंभीर, मधुर हर प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करनें में सक्षम हो सके। आचार्य भरत नें अवनद्ध वाद्यों की संख्या सौ बताई है। किन्तु त्रिपुष्कर के अतिरिक्त "दुन्दुभी" सहित अन्य कोई अवनद्ध वाद्य स्वर, प्रहार, अक्षर व मार्जना संयोजन के व्यवस्था के अनुकूल नहीं था। त्रिपुष्कर वाद्य के तीनों भाग प्रारंभ में एक ही वाद्य के हिस्से थे तत्पश्चात इनके अलग-अलग भागों में विभक्त होनें से आंकिक भाग एक स्वतंत्र अवनद्ध वाद्य तथा ऊर्ध्वक व आलिंग्य दोनों ऊर्ध्वमुखी भागों की जोड़ी एक अन्य स्वतंत्र अवनद्ध वाद्य के रूप में विकसित हुए। अतः यह कहा जा सकता है की भरत कालीन "त्रिपुष्कर" वाद्य के विघटन स्वरूप दो प्रकार के स्वतंत्र अवनद्ध वाद्यों का विकास हुआ। पहला वे वाद्य जो लिटाकर बजाये जाने लगे आंकिक भाग से विकसित हुए। जैसे – मृदंग, पखावज, ढोलक, खोल, नाल आदि। तथा दुसरे वे वाद्य जो जोड़ी के रूप में बजाये जानें वाले ऊर्ध्वमुखी वाद्यों से विक्सित हुए। जैसे – दुक्कड़, नगाड़ा, तबला आदि। (मिश्र- 3-4)

उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय ताल पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय शास्त्रीय संगीत में लय एवं ताल का महत्त्व अत्याधिक व्यापक है। ताल द्वारा गायन-वादन अथवा नर्तन को आधार प्राप्त होता है। प्राचीन काल में सशब्द एवं निःशब्द क्रियाओं द्वारा ताल प्रदर्शित करनें का विधान था एवं अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग अनुरंजन के लिए होता था। किन्तु कालांतर में अवनद्ध वाद्यों द्वारा अनुरंजन के साथ-साथ ताल की भी अपेक्षा की जाने लगी है। जबकि कर्नाटक संगीत में आज भी हाथ पर क्रियाओं द्वारा ताल प्रदर्शन का विधान है। अतः गायक-वादक को ताल का ज्ञान अति आवश्यक है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित वर्णन प्राप्त है –

"यस्तु ताल न जानाति, गायकों न च वादकः
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, कार्यं तालावधारणं ।"

अर्थात जिन्हें ताल का ज्ञान नहीं वह गायक अथवा वादक कहलानें योग्य नहीं हैं। अतः निरंतर परिश्रम एवं तपस्या द्वारा ताल विद्या को ग्रहण करना आवश्यक है। (गोडबोले- 2)

कर्नाटक ताल पद्धति जिस प्रकार एक सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित तथा मूल तत्वों आदि के आधार पर हमारे समक्ष है उस प्रकार उत्तर भारतीय ताल पद्धति में वह स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता। दक्षिण भारतीय ताल पद्धति पूर्णतः जातियों पर आधारित है तथा इनमें लघु अंग का विशेष महत्त्व है इसका मात्राकाल विभिन्न जातियों के आधार पर बदल जाता है किन्तु उत्तर भारतीय ताल पद्धति में ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं है। उत्तर भारत में तालों की संख्या अनिश्चित होती है एवं प्रत्येक ताल के बोल निश्चित हैं किन्तु दक्षिण भारत में तालों की संख्या निश्चित हैं तथा तालों के बोल निश्चित नहीं होते हैं। यहाँ मुख्य सात तालें प्रचलन में हैं जो सप्तसुलादि ताल कहलाती हैं। इन्हीं तालों द्वारा जाति भेद से 35 तालें तथा गति भेद से 175 तालों की रचना की गई है। उत्तर भारतीय ताल पद्धति में दक्षिण भारतीय ताल पद्धति की अपेक्षा गणित का विशेष महत्त्व दृष्टिगोचर नहीं होता है। ताल के प्राचीन मूल तत्त्व जिन्हें हम ताल के दस प्राण के नाम से जानते हैं इसका प्रयोग भी दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में प्रचुरता से किया जाता है। किन्तु उत्तर भारतीय ताल पद्धति में ताल दस प्राण के कठोरता से पालन का निश्चित नियम नहीं है। इसके अलावा भी ऐसी अन्य कई भिन्नताएं इन दोनों ताल पद्धतियों में पायी जाती है।

अंतर्संबंधिक प्रयोग

उत्तर भारतीय अवनद्ध वाद्य तबला तथा दक्षिण भारतीय अवनद्ध वाद्य मृदंगम ये दोनों ही वाद्य भिन्न ताल परम्पराओं के प्रतिनिधि हैं किन्तु दोनों का लयात्मक उद्देश्य सामान ही है। इसी समानता के आधार पर इन्हें एक साथ प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग केवल तकनीकी संगति ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक समरसता का प्रतीक भी है। इन वाद्यों के अंतर्संबंधिक प्रयोग का उद्देश्य यही है की इन दोनों वाद्यों की विशिष्ठता को बनाए रखते हुए उनकी सामान लयात्मकता को एकीकृत रूप में प्रस्तुत किया जा सके। तबले की ताल पद्धति जहाँ आम जन मानस के लिए सरल, स्पष्ट एवं सुगम होती है वहीं मृदंगम की ताल पद्धति अत्यधिक जटिल, गणनात्मक एवं तकनीकी दृष्टि से समृद्ध है। (डॉ. बी. सत्यवर प्रसाद) पिछले कुछ वर्षों में यह काफी देखा जा रहा है की बड़े - बड़े मंचों पर तबला एवं मृदंगम वादक एक साथ अपनी मंच प्रस्तुति दे रहे हैं जो कभी परम्परागत रूप में तो कभी जुगलबंदी के रूप में तो कभी फ्यूज़न संगीत के रूप में दृष्टिगोचर हो रही है। ऐसे कार्यक्रमों में परम्पराओं के वादक एक ही मात्राओं के तालों के चक्र में मिलकर अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं जिसे श्रोताओं द्वारा काफी पसंद भी किया जा रहा है। अर्थात एक ही मंच पर उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय ताल वाद्यों का अद्भुत संवाद देखनें को मिल रहा है। अतः ताल परम्पराएँ पारस्परिक रूप से अधिक समृद्ध हो रही हैं। इसके एक जीवंत उदहारण के रूप में ताल योगी पं. सुरेश तलवलकर जी को देखा जा सकता है जिन्होनें उत्तर भारतीय वादन शैली में दक्षिण भारतीय वादन शैली के गणितीय प्रयोग को आत्मसात किया एवं एक नई वादन शैली को बढ़ावा दिया अतः एक नई वादन शैली का प्रादुर्भाव हुआ तथा कर्नाटक शैली के कठिन गणितीय प्रयोग को आम जन मानस को समझनें में सहजता हुई। (प्रो. प्रवीण उद्धव) वर्त्तमान समय में विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में तबला एवं मृदंगम विद्वानों को आमंत्रित किया जा रहा है। जिसमें दक्षिण भारतीय परम्परा के अनुसार हाथ पर ताल देकर तबला वादन हो रहा है जो की दक्षिण भारतीय परम्परा से ग्रहण किया गया है [10] तथा उत्तर भारतीय परम्परा के अनुसार हारमोनियम या सारंगी आदि स्वर वाद्यों द्वारा लहरा वादन के साथ मृदंगम वादन देखनें को मिल रहा है जिसे उत्तर भारतीय परम्परा से ग्रहण किया गया है। [11] विद्यार्थियों को कर्नाटक संगीत के षाडांग प्रयोग तथा हिन्दुस्तानी संगीत के मात्रा विभाजन का तुलनात्मक

प्रशिक्षण दिया जा रहा है। जिसके फलस्वरूप युवा तबला वादक अंग प्रयोगों तथा मृदंगम वादक भी बोल आधारित ठेकों को समझ पा रहे हैं। अतः इन अंतर्संबंधिक प्रयोगों द्वारा वैश्विक स्तर पर भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की एक अलग ही पहचान हो रही है।

निष्कर्ष

आज के इस वर्त्तमान समय में जब भारतीय संगीत की सीमाएँ केवल परम्परागत मंचों तक सीमित नहीं हैं तो ऐसे में इन दोनों अवनद्ध वाद्यों के अंतर्संबंधिक प्रयोग नें भारतीय संगीत के क्षेत्र में एक नई दृष्टि प्रदान की है तबला एवं मृदंगम इन दोनों वाद्यों के संयुक्त प्रयोग से यह स्पष्ट होता है की तबले पर "तीनताल" तथा मृदंगम पर "आदितालम" एक ही लय में एक साथ वादन यह व्यक्त करता है की दोनों प्रणालियाँ किस प्रकार से एक लयात्मक बंधन में जुड़ जाती हैं। इसे भारतीय संगीत में लयात्मकता की दृष्टि से राष्ट्रीय एकीकरण कहा जा सकता है। इनके अंतर्संबंधिक प्रयोगों नें वादकों को नई तकनीकों के विकास के लिए प्रेरणा दी है जिससे ये दोनों ही वाद्य अपनीं पारंपरिक सीमाओं से आगे निकलकर वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना रहे हैं। यह केवल दो वाद्यों का संगम नहीं बल्कि संस्कृति, भाषा एवं दर्शन का भी अनोखा संगम बन जाता है। ऐसा मेरा मत है की भविष्य में इन ताल वाद्यों के संयुक्त अध्ययन से नई वादन पद्धति और शिक्षण विधियों के विकास की व्यापक संभावनाएँ हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Sunil, Erikavu N., Resounding Mridangam, Directly Published -ISBN: 9789354573804, 2021.
2. Sankaran, Trichy, The Rhythmic Principles & Practice of South Indian Drumming, Lalith Publishers, Toronto, Canada, M2M1W8, 1994.
3. गुप्ता, सत्या, पखावज एवं मृदंगम की संरचना, निकास व वादन शैली का तुलनात्मक अध्ययन, शोध प्रबंध, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2023.
4. श्रीवास्तव, गिरीश चन्द्र, ताल कोश, रूबी प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2017.
5. श्रीवास्तव, गिरीश चन्द्र, ताल परिचय भाग-1, रूबी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008.
6. Gopalakrishnan, Dr. T.V., Mridangam the King of Percussions, Vision Musica Chennai, India 2007.
7. मिश्र, छोटेलाल, ताल प्रबन्ध, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006.
8. गोडबोले, मधुकर गणेश, तबला शास्त्र, अशोक प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, 1987.
9. साक्षात्कारः डॉ. बी. सत्यवर प्रसाद (मृदंगम आचार्य), संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 05-10-2025, 13:10.
10. साक्षात्कारः प्रो. प्रवीण उद्धव (तबला आचार्य), संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 12-09-2025, 14:00.
11. https://www.youtube.com/watch ?v=CrV_qgNf60M&t=29s, 00:25.
12. https://www.youtube.com/watch ?v=5ltLUCFTsCk&t =11526s, 03:21:00.